128

ISSN-2231-3885 Samved

संवेद

जनवरी 2026, मूल्य : ₹ 200

संचार, संवेदना और कहानी

किताबें
जो आपको ज़रूर पढ़नी चाहिए

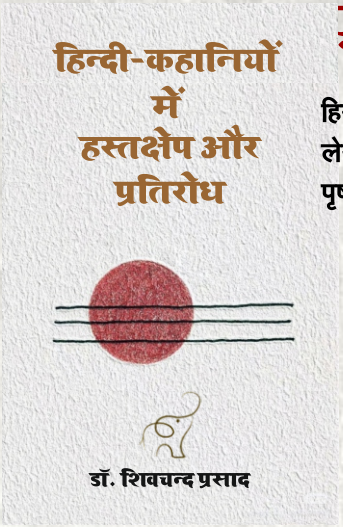

हिन्दी कहानियों में हस्तक्षेप और प्रतिरोध
लेखक : शिवचंद प्रसाद
पृष्ठ 504 मूल्य 750

तिरहर के. डी. सिंह की कहानियाँ
तिरहर
लेखक : के. डी. सिंह
पृष्ठ 206 मूल्य 499

भोला भेलपूरी के. डी. सिंह का लघु उपन्यास
पृष्ठ 126 मूल्य 350

अनामिका प्रकाशन
/AnamikaPrakashan /anamikaprakashan /AnamikaPrakashan
+91-9415347186 anamikabooks@gmail.com
: www.anamikaprakashan.com

ISSN-2231-3885 SAMVED

संवेद-128

जनवरी, 2026

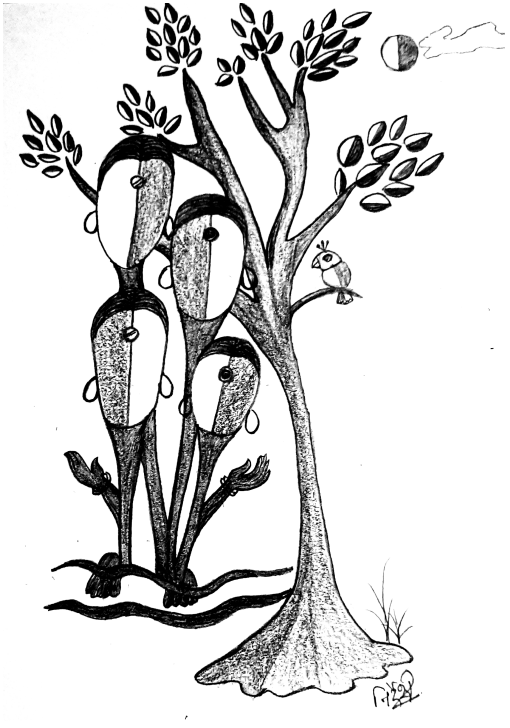

सम्पादक : **किशन कालजयी**
सहायक सम्पादक : **आशा**
रत्नेश सिन्हा
दिव्यानन्द

सम्पादकीय सम्पर्क
बी-3/44, सेक्टर-16,
रोहिणी, दिल्ली-110089
मो. : +918340436365
samvedmonthly@gmail.com

आवरण : शशिकान्त सिंह

वितरक
रचनाकार पब्लिशिंग हाउस
डी-18, स्ट्रीट नम्बर-9, जगतपुरी एक्सटेंशन
शाहदरा, दिल्ली-110093

स्वामी, प्रकाशक व मुद्रक कुमकुम कुमारी द्वारा
बी-3/44, सेक्टर-16, रोहिणी, दिल्ली-110089
से प्रकाशित और लक्ष्मी प्रिंटर्स, 556, जीटी रोड,
शाहदरा, दिल्ली-110032 से मुद्रित।

इस अंक के लिए सहयोग राशि : दो सौ पचास रुपये

सम्पादन : अवैतनिक
लेखकों के व्यक्त विचारों से सम्पादक या प्रकाशक का सहमत होना अनिवार्य नहीं।
पत्रिका से सम्बन्धित समस्त विवाद दिल्ली न्यायालय के अन्तर्गत विचाराधीन।

अनुक्रम

संवेद्य

किशन कालजयी : हिन्दी कहानी का नया समय / 6

कहानियाँ

सन्तोष दीक्षित : उस कानून के देस में / 13

तरुण भटनागर : रात की बारहखड़ी / 20

भालचन्द्र जोशी : सपने का टुकड़ा और चमड़े का बैग / 29

दिव्या विजय : कृष्ण-पंखुरी / 38

वैभव सिंह : मीना बाजार / 47

हरि भटनागर : उफ / 54

पंकज मित्र : बापू सेहत के लिए तू तो हानिकारक है / 60

प्रेम रंजन अनिमेष : जानी है जब जान पियारे... / 69

राकेश दूबे : खोई हुई हँसी / 80

उर्मिला शुक्ल : जोहार / 94

रश्मि शर्मा : निर्वसन / 108

सोनी पाण्डेय : मोहपाश / 119

चन्द्रकला त्रिपाठी : कच्ची हल्दी की गन्ध / 129

विनीता परमार : इमोजी / 138

कुंदन यादव : विपर्यय / 147

जमुना बीनी : बाँस का फूल / 156

श्रद्धा थवाईत : जंगल की पगडण्डी / 171

मो. आरिफ : दिल पत्थर / 176

शताब्दी स्मरण

गीता दूबे : हरिशंकर परसाई की रचनाओं में सत्ता और समाज / 202

लेख

शिवदयाल : भारत में शिक्षा : गौरव से ग्लानि की यात्रा / 212

धर्मेंद्र प्रताप सिंह : हिन्दी रंगकर्म का उर्वर क्षेत्र : दिल्ली रंगमंच / 229

कविताएँ

जाक प्रिवैर : अगस्त की दोपहर / 233
(अनुवाद : **योजना रावत**)

ऋत्विक भारतीय : तीन कविताएँ / 240

लेख

जय प्रकाश : मलय की कहानियाँ : हहराती स्थितियों के आतंक के बीच / 245

नीरज खरे : मिथक, गल्प और यथार्थ के संग : तीन कथा रंग / 253

अवधेश प्रीत : पाठ और स्मृति

श्रीनारायण समीर : लोक धारणा से इतर कथा धारणा / 259

रामदेव सिंह : मेरा हमदम मेरा दोस्त / 265

वक्तव्य

रश्मि रावत : आलोचना और पाठक / 276

शोध लेख

कुसुम नेहरा : 'माधवी' में स्त्री के विविध रूप / 282

धनंजय राय : एजाज अहमद : जनवादी सिद्धान्तकार / 287

पुस्तक समीक्षा

हृषीकेश सुलभ : असम्भव के विरुद्ध कवि-स्वर / 295

गरिमा श्रीवास्तव : इतिहास, कल्पना और यथार्थ का समन्वय / 299

सुभाषचन्द्र गुप्त : कुछ सार्थक घटित होने की प्रतीक्षा / 303

अलका प्रकाश : माँ की रूढ़ छवि को तोड़ती कहानियाँ / 309

कुमारी उर्वशी : जीवन के यथार्थ की कहानियाँ / 312

सरिता सिन्हा : वैचारिक और रचनात्मक दबावों के बीच की कहानियाँ / 320

रेखांकन : निर्देश निधि

हिन्दी कहानी का नया समय

हिन्दी कहानी एक जीवित परम्परा है। वह केवल अपने समय की साक्षी नहीं, बल्कि भविष्य की सम्भावनाओं का सन्धान भी है। प्रेमचन्द से नयी कहानी, और नयी कहानी से समकालीन कहानी तक यह शृंखला किसी खण्डित विरासत की नहीं, बल्कि निरन्तर संवाद और विकास की प्रक्रिया का हिस्सा है।

हिन्दी कहानी ने अपने विकास की यात्रा में अनेक पड़ाव देखे हैं। प्रेमचन्द की यथार्थवादी परम्परा से लेकर नयी कहानी के संवेदनात्मक उभार तक, और फिर समकालीन कहानियों के बहुविध अनुभव-संसार तक। यह यात्रा केवल विधागत परिवर्तन की नहीं, बल्कि सामाजिक यथार्थ, रचनात्मक दृष्टिकोण और मनुष्य की बदलती चेतना की भी यात्रा रही है।

1947 में मिली स्वतन्त्रता भारत के राजनीतिक इतिहास का ही नहीं, सांस्कृतिक इतिहास का भी निर्णायक मोड़ थी। सदियों की परतन्त्रता से मुक्त होकर एक राष्ट्र पहली बार अपने अस्तित्व, स्वाभिमान और आत्मबोध के साथ खड़ा हुआ। इस स्वतन्त्रता ने साहित्य को जहाँ एक नयी ऊर्जा दी, वहीं विभाजन की अमानवीय त्रासदी ने रचनाकारों को भीतर तक झकझोर दिया। जब स्वतन्त्र भारत का स्वप्न यथार्थ की विषम भूमि पर संघर्ष, असमानता और टूटते सम्बन्धों के बीच आकार लेने लगा, तब 'नयी कहानी' के रूप में एक नयी कथा-दृष्टि का जन्म हुआ।

1950 से 1965 के बीच हिन्दी साहित्य में जो 'नयी कहानी' आन्दोलन उभरा, उसे केवल एक रचनात्मक प्रवृत्ति नहीं, कथा-साहित्य की चेतना का निर्णायक मोड़ कहना अधिक उपयुक्त होगा। इसने सिर्फ कथ्य और संवेदना के धरातल पर ही नहीं, बल्कि मूल्यांकन और शिल्प की कसौटियों पर भी गहरे हस्तक्षेप किये। प्रेमचन्द की सामाजिक प्रतिबद्धता की विरासत को आत्मसात करते हुए इसने कथा को आत्मान्वेषी, सामाजिक और वैचारिक संवाद का माध्यम बना दिया।

कमलेश्वर, मोहन राकेश, मन्नू भण्डारी, भीष्म साहनी, निर्मल वर्मा और राजेन्द्र यादव

जैसे रचनाकारों ने कहानी को उसके समय से जोड़ा और उस कृत्रिम मनोविश्लेषणात्मक 'अभिजात' आग्रह से दूरी बनायी, जो जैनेन्द्र-अज्ञेय की कहानियों में प्रेम और आत्मा की गूढ़ता के नाम पर एक प्रकार की रूमानी धुन्ध रच रहा था।

'नयी कहानी' के केन्द्र में व्यक्ति और उसका अकेलापन था—वह मनुष्य जो सम्बन्धों के टूटते हुए बुनियादी ताने-बाने में अपने को अकेला पाता है। यह केवल प्रेम की विफलताओं की नहीं, सम्बन्धों की विडम्बनाओं की कथा थी। राजेन्द्र यादव ने ठीक ही कहा था कि "हमारे इस कथा-काल की सारी कहानियाँ सम्बन्धों के टूटने की कहानियाँ हैं।" यह कथन इस आन्दोलन की आत्मा और उसकी वैचारिक स्पष्टता को उद्घाटित करता है।

मोहन राकेश की 'आर्द्रा', राजेन्द्र यादव की 'जहाँ लक्ष्मी कैद है' और कमलेश्वर की 'राजा निरबंसिया' जैसी कहानियाँ मध्यवर्गीय जीवन में उगती संवेदनात्मक रिक्तता और मानसिक उलझनों का तीव्र चित्रण करती हैं। निर्मल वर्मा और उषा प्रियंवदा के यहाँ यह अकेलापन आधुनिक जीवन की अस्तित्वगत बेचैनी बनकर और अधिक गहराता है। भीष्म साहनी 'नयी कहानी' आन्दोलन की सीमाओं को तोड़ते हुए एक अलग ही कथा-धारा की रचना करते हैं। वे प्रेमचन्द की तरह समाज के भीतर मनुष्य को नहीं, बल्कि मनुष्य के भीतर समाज को खोजते हैं। उनका कथा-संसार शहरी स्लम जीवन की वास्तविकताओं, संघर्षों और स्वप्नों का यथार्थपरक विश्लेषण है। अगर प्रेमचन्द गाँव के जीवन की व्यापकता को हिन्दी साहित्य में लेकर आते हैं, तो भीष्म साहनी नागर जीवन की उतनी ही समर्पित और प्रामाणिक प्रस्तुति करते हैं।

नयी कहानी का ऐतिहासिक महत्त्व इस बात में निहित है कि उसने न केवल कहानी की विधा को आधुनिक बनाया, बल्कि उसे एक संवेदनशील, विचारशील और सामाजिक रूप से प्रासंगिक माध्यम भी बनाया। यह कथा आन्दोलन अपने समय की आत्मजाग्रत साहित्यिक चेतना का स्वाभाविक प्रस्फुटन था।

'नयी कहानी' की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह भी रही कि उसने स्त्री को मौन, त्यागमयी पात्र के बने-बनाए साँचे से बाहर निकालकर उसे अपनी चेतना, निर्णय और अस्मिता के साथ प्रस्तुत किया। यहाँ स्त्रियाँ प्रेम में केवल आहें नहीं भरतीं, निर्णय लेती हैं, विरोध करती हैं और सम्बन्धों को तोड़ने का साहस भी करती हैं। मन्नू भण्डारी की कहानी 'यही सच है' इसका श्रेष्ठ उदाहरण है जहाँ एक शिक्षिका अपने जीवन की जटिलताओं को समझते हुए न केवल प्रेम का मूल्यांकन करती है, बल्कि एक साहसिक निर्णय भी लेती है। यह स्त्री-अस्मिता की उस पुनर्व्याख्या की शुरुआत थी जिसने आगे चलकर स्त्री-लेखन की जमीन को तैयार किया।

शिल्प और भाषा के स्तर पर भी 'नयी कहानी' ने हिन्दी कथा को एक नये धरातल पर खड़ा किया। यह न तो कृत्रिम क्लाइमेक्स की ओर भागती है, न ही वाचिक चमत्कारों पर टिकी होती है। यह ठहरी हुई, संवेदनशील, मितभाषी और प्रामाणिक भाषा के सहारे पात्रों की मनःस्थितियों और सामाजिक तनावों को पाठक तक पहुँचाती है। वह पाठक को केवल कहानी नहीं, अनुभव देती है।

अक्सर यह कहा जाता रहा है कि नयी कहानी शहरी मध्यवर्ग तक सीमित है, लेकिन यह दृष्टि अधूरी है। इस आन्दोलन ने गाँव की उपेक्षित भूमि को भी पुनः देखा और परखा। मार्कण्डेय, शिवप्रसाद सिंह और फणीश्वरनाथ रेणु जैसे कथाकारों ने ग्रामीण जीवन को नयी

संवेदना और दृष्टि से प्रस्तुत किया। मार्कण्डेय की 'हंसा जाई अकेला' में एक वृद्ध किसान के अकेलेपन के बहाने शहरीकरण और पारिवारिक विघटन की पीड़ा उभरती है। यह कहानी जैसे पीढ़ियों के संवादहीन सम्बन्धों की त्रासदी का दस्तावेज है। शिवप्रसाद सिंह की 'कर्मनाशा की हार' में नदी सिर्फ एक भौगोलिक तत्त्व नहीं, बल्कि जातीय विडम्बना, धार्मिक पाखण्ड और सांस्कृतिक संघर्ष की सशक्त प्रतीक बन जाती है। यह यथार्थ को दर्शन और मिथकीय बिम्बों से जोड़कर एक गहरे सामाजिक विमर्श की जमीन तैयार करती है। रेणु की 'मारे गये गुलफाम' (बाद में जिस कहानी पर 'तीसरी कसम' के नाम से प्रसिद्ध फिल्म बनी) में ग्रामीण जीवन, लोक-संस्कृति और प्रेम की मासूमियत एक भावनात्मक महाकाव्य में बदल जाती है। हीरामन और हीराबाई के रिश्ते के माध्यम से कहानी सामाजिक नैतिकताओं से टकराती है और भाषा, गन्ध, दृश्य और ध्वनि के माध्यम से एक सम्पूर्ण अनुभव का निर्माण करती है।

यह स्पष्ट है कि 'नयी कहानी' किसी विचारधारा का घोषणापत्र नहीं थी, न ही किसी सैद्धान्तिक प्रतिबद्धता की प्रचारक। वह अपने समय की बौद्धिक, संवेदनात्मक और सामाजिक जरूरत से उपजा एक आत्मसम्पृक्त साहित्यिक विवेक थी। इसका ऐतिहासिक महत्त्व इस बात में है कि उसने कहानी को संवेदना, आत्मविश्लेषण और सामाजिक यथार्थ के समन्वय की एक नयी दृष्टि दी। उसने यह प्रमाणित किया कि कहानी की जड़ें केवल शहरी अनुभवों में नहीं, गाँव की धूल, बोलियों और सांस्कृतिक द्वन्द्वों में भी हैं।

आज जब गाँव एक बार फिर संकटों से घिरे हैं विस्थापन, बेरोजगारी और सांस्कृतिक विखण्डन बढ़ रहा है तब इन कहानियों का पुनर्पाठ पहले से अधिक आवश्यक हो गया है। 'नयी कहानी' के भीतर जो मानवीय जिजीविषा और ग्रामीण चेतना धड़कती है, वही समकालीन कथा-साहित्य को गहराई और प्रासंगिकता देने में सक्षम है। यही उसकी स्थायी उपलब्धि है और यही आज की हिन्दी कहानी की आधारभूमि भी।

हिन्दी कहानी का समय निरन्तर बदल रहा है न केवल समाजशास्त्रीय और राजनीतिक सन्दर्भों में, बल्कि अपनी अन्तर्वस्तु, शिल्प, आलोचना और पाठकीय सहभागिता में भी। क्या समकालीन कहानी आज भी वैचारिक ऊष्मा और संवेदनात्मक गहराई को बनाए हुए है? यह प्रश्न हिन्दी कथा-साहित्य के समक्ष एक प्रमुख चुनौती के रूप में उपस्थित है।

इक्कीसवीं सदी का हिन्दी कथा-साहित्य एक जटिल संक्रमण काल से गुजर रहा है। यह संक्रमण केवल कथ्य और शिल्प के बदलाव का नहीं, बल्कि कहानी के मूल स्वभाव उसके कहानीपन, संवेदना और स्मृति की निरन्तरता के संकट का भी है। समकालीन कहानी आज एक ऐसे चौराहे पर खड़ी है, जहाँ उससे पुरानी कसौटियों पर खरा उतरने की अपेक्षा है, तो साथ ही बदलते सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक सन्दर्भों में अपनी प्रासंगिकता सिद्ध करने की भी चुनौती है।

यह सदी तकनीक, तात्कालिकता, बाजारवाद और विमर्शों की सदी है जहाँ पाठक का ध्यान आकर्षित करना जितना कठिन है, लेखक/रचनाकार के लिए अपनी प्रतिबद्धता बनाए रखना उससे भी ज्यादा चुनौतीपूर्ण। ऐसे में यह स्वाभाविक है कि हम पूछें क्या हिन्दी कहानी आज भी वह केन्द्रीय साहित्यिक विधा है, जो कभी 'नयी कहानी' के समय में थी?

भूमण्डलीकरण के बाद के साहित्यिक परिदृश्य में यह स्पष्ट है कि अब कोई एक विधा

केन्द्र में नहीं है। कविता, उपन्यास, कहानी सभी अपनी-अपनी सीमाओं और सम्भावनाओं के साथ सक्रिय हैं। लेकिन उपन्यास को मिल रहे पाठकीय और प्रकाशकीय समर्थन ने यह भ्रम पैदा किया है कि कहानी हाशिए पर जा रही है। जबकि सच यह है कि कहानी की प्रकृति ही भिन्न है वह 'क्षण' में पूरा होते हुए 'सम्पूर्ण' को छूने की कला है।

उपन्यास जहाँ एक दीर्घकालिक, बहुवर्णी यथार्थ को समेटने की विधा है, वहीं बाजार को 'बड़ा कथ्य' और 'दीर्घावधि ब्रांडिंग' की आवश्यकता है इसलिए उपन्यासों को प्राथमिकता मिलती है, विशेषकर बेस्टसेलर की क्षमता वाले उपन्यासों को। प्रकाशक, पुस्तक मेले, विमोचन और अनुवाद उद्योग ने उपन्यास को एक ब्राण्ड में तब्दील कर दिया है। इसके बरक्स, कहानी एक तात्कालिक, तीव्र और संक्षिप्त विधा है। वह 'एकल क्षण' की तीव्रता को समेटती है। पर बाजार को वह 'ब्राण्ड एक्सटेंशन' नहीं दे पाती जो उपन्यास देता है। इसीलिए कहानी संग्रहों की छपाई, बिक्री और चर्चा अपेक्षाकृत कम है।

आज की कहानी विमर्शों के दबाव के कारण बहुस्वरता की ओर बढ़ चली है। स्त्री, दलित, आदिवासी, पर्यावरण, उत्तर-पूर्व भारत, मिथकीय पुनर्पाठ, लिंग-भेद, बाजारवाद, धार्मिक विडम्बनाएँ और संचार की आक्रामकता जैसे हर मोर्चे पर कहानी ने सजग हस्तक्षेप किया है। यह विस्तार हिन्दी कहानी को लोकतान्त्रिक बनाता है, लेकिन जब विमर्श औचित्य और संवेदना के स्थान पर 'अनिवार्य नीति' बन जाता है, तो रचना की आत्मा संकट में पड़ जाती है।

विमर्शों ने हिन्दी कहानी को नयी आवाज और नये अनुभव दिये यह निःसन्देह स्वागत योग्य है। लेकिन अतिशय आग्रह ने कथा-संरचना की वह सहजता दबा दी है, जिससे कहानी पाठक तक आत्मीय रूप में पहुँचा करती है। पाठकों की घटती रुचि का यह एक अनकहा, किन्तु निर्णायक कारण है।

आज कई बार कहानी को एक तयशुदा विचारधारात्मक साँचे में ढालने की जिद दिखती है, जिससे वह जीवन की जटिलता, नैतिक द्वन्द्व और भावनात्मक विविधता से कट जाती है। लेखक यदि अपने वर्ग, पहचान या विचारधारा के प्रति जवाबदेह है, तो वह सराहनीय है; पर जब यह जवाबदेही कथा-कला की मूल संवेदना को बाधित करे, तो वह कहानी के बजाय घोषणापत्र बन जाती है।

फिल्मों और वेब सीरीज के प्रभाव से कहानी में तात्कालिकता और चौंकाने वाले तत्त्व बढ़े हैं, लेकिन स्थायित्व और स्मृति की जगह सिमट गयी है। आज की संवाद-शैली और शब्दावली पटकथात्मक होती जा रही है, जिससे साहित्य की जगह मनोरंजन का असर अधिक महसूस होता है। कमलेश्वर की 'राजा निरबंसिया', मोहन राकेश की 'मलबे का मालिक', निर्मल वर्मा की 'परिन्दे' और उषा प्रियंवदा की 'वापसी' जैसी कहानियाँ आज भी स्मृति में इसलिए जीवित हैं क्योंकि वे समय और संवेदना के गहरे तल तक उतरती हैं। जबकि आज की कई कहानियाँ शीघ्र प्रभावित करती हैं, पर उतनी ही जल्दी विस्मृत भी हो जाती हैं।

आज का कथा-परिदृश्य एक बाढ़ की तरह है जिसमें सतही प्रवाह के साथ कई मूल्यवान कहानियाँ बह रही हैं, जिनका मूल्यांकन कठिन होता जा रहा है। गाँव और विस्थापन जैसे सरोकार अब भी मौजूद हैं, लेकिन अक्सर यह कहा जाता है कि गाँव कहानी से गायब हो गया है यह अधूरी दृष्टि है। शिवमूर्ति, संजीव, चन्द्रकिशोर जायसवाल, महेश कटारे, मैत्रेयी